इकाई 26 जल : सुलभता, नियंत्रण तथा प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

26.0 प्रस्तावना

26.2 जल सुलभता की वर्तमान स्थिति

26.2.1 पानी की प्रचुरता

26.2.2 घटी सुलभता

26.3 ब्रिटिश पूर्व भारत में जल-प्रबंध प्रणालियाँ

26.3.1 विभिन्न जल-प्रबंध प्रणालियाँ

26.3.2 पानी : सार्वजनिक सम्पत्ति के रूप में

26.3.3 सीमित सुलभता

26.3.4 वितरण में सहभागिता

26.3.5 अनुरक्षण में सहभागिता

26.4 औपनिवेशिक और समकालीन भारत में जल नीति

26.4.1 ब्रिटिश जल नीति

26.4.2 स्वाधीनता के बाद जल नीति

26.4.3 बहुसंख्यक लोगों को जल की कम सुलभता

26.4.4 विस्थापन : कौन प्रभावित होता है?

26.5 राष्ट्रीय जल नीति, 1987 : क्या इससे जल सुलभता बढ़ी है?

26.5.1 प्राथमिकताओं का निर्धारण

26.5.2 समर्थ वर्गों के लिए कार्यनीति

26.5.3 संभावित विकल्प

26.6 सारांश

26.7 शब्दावली

26.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके लिए संभव होगा :

- ग़रीब वर्ग, विशेष रूप से महिलाओं, के लिए पानी की सुलभता की वर्तमान स्थिति का वर्णन करना;
- भारत में जल-प्रबंध और जल-वितरण प्रणालिओं के बारे में बताना;
- उन जल प्रणालियों का विश्लेषण करना, जिनके कारण जल-संसाधनों पर समाज के सशक्त वर्गों का एकाधिकार हो गया है;

- इस स्थिति के कारण समाज के ग़रीब वर्गों, विशेष रूप से महिलाओं, पर पड़ने वाले प्रभाव को समझना; और
- इस स्थिति से उत्पन्न समस्या के समुचित समाधान की व्याख्या करना।

26.1 प्रस्तावना

इकाई 25 में हमने भूसंपदा के महत्त्वपूर्ण संसाधन की प्राप्यता तथा उसके नियंत्रण और प्रबंधन के बारे में विचार किया था। जल मनुष्य के जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण संसाधन है, जल के बिना जीवित रहना संभव नहीं है। प्रस्तुत इकाई 26 में हम भारत में उन सामाजिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करेंगे जो जल संसाधनों के एकाधिकारिक नियंत्रण और तथाकथित **वैज्ञानिक प्रबंध** के कारण पैदा होती हैं।

पानी की सुलभता मानवमात्र का मूलभूत अधिकार है क्योंकि इसके बिना जीवित रहना असंभव है। समाज के विभिन्न वर्गों को जिस तरह पानी उपलब्ध होता है उस विषय पर चर्चा शुरू करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम परंपरागत जल-प्रबंध और उसकी वितरण व्यवस्था का विश्लेषण करें तथा उसकी ब्रिटिश शासन के दौरान एवं आज़ादी के बाद की जल-प्रबंध नीतियों से तुलना करें। इससे हमारा ध्यान कुछ प्रश्नों की ओर जाता है। जैसे, इस व्यवस्था से किन वर्गों को अधिक जल उपलब्ध हो रहा है और किन वर्गों को पानी के अभाव का सामना करना पड़ रहा है? आज हमारी जल विकास नीतियों का प्रभाव किन वर्गों पर पड़ रहा है? स्पष्ट है कि कुछ वर्गों ने अन्य वर्गों की आवश्यकताओं को नज़रअंदाज करके जल संसाधन पर एकाधिकार कर लिया है। राष्ट्रीय जल नीति को बनाने वालों को इस समस्या का हल ढूँढ़ना होगा। इसीलिए इस इकाई के अंत में हम राष्ट्रीय जल नीति, 1987, पर चर्चा करेंगे। साथ ही, इस बात की जाँच भी करेंगे कि यह नीति कहाँ तक इस समस्या का समाधान करने में सक्षम है।

26.2 जल सुलभता की वर्तमान स्थिति

आज भारत में पानी की सुलभता और प्रबंध व्यवस्था में कुछ परस्पर विरोध दिखाई देता है। एक ओर तो देश में पानी की बहुतायत है, पिछले चालीस-पचास सालों में बाँधों की संख्या में तो बहुत अधिक वृद्धि हुई है लेकिन दूसरी ओर बहुसंख्यक लोगों को पहले से भी कम पानी मिल रहा है, इसलिए कई क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं। इस खंड में हम पहले प्रचुर मात्रा में पानी की उपलब्धता के बारे में चर्चा करेंगे, फिर उसके बाद पानी का उपयोग करने वालों को पानी की सुलभता में कमी की स्थिति की समीक्षा करेंगे।

26.2.1 पानी की प्रचुरता

नाग और कथपालिया (1975) द्वारा तैयार किए गए जल अनुक्रम चार्ट के अनुसार, भारत में वर्षा तथा पर्वतों की बर्फ़ में पिघलने आदि से कुल 39.4 करोड़ हैक्टेयर मीटर (है.मी.) औसत वार्षिक पानी उपलब्ध होता है। इसमें यदि धरती पर हिमपात के आंकड़ों (जो उपलब्ध नहीं हैं) को भी जोड़ दें तो कुल 40 करोड़ है.मी. जल होता है। इस 40 करोड़ है.मी. में उन नदियों के 2 करोड़ है.मी. जल को भी जोड़ा जो सकता जो हिमालय के जलाशय वाले (watershed) क्षेत्र में स्थित पड़ोसी देशों की नदियों से बहकर आता है। आइए, अब हम देखें कि देश में उपलब्ध इस 40 करोड़ है.मी. (या 42 करोड़ है.मी.) जल संसाधन का किस प्रकार उपयोग होता है।

इस 40 करोड़ है.मी. पानी में से 4 करोड़ है.मी. पानी भाप बनकर वायुमंडल में खो जाता है। इसके बाद 33 करोड़ है.मी. पानी बचा रहता है। इसमें से 21.5 करोड़ है.मी. पानी ज़मीन में रिस जाता है। रिसने वाले पानी में से केवल लगभग 4.5 करोड़ है.मी. जमीन पर बहता है। अब बच रहा 11.5 करोड़ है.मी. पानी। यह वह पानी है जो ज़मीन पर वर्षा के रूप में

गिरता है। यह पानी जलधाराओं और अन्य स्रोतों में प्रवाहित होता है। इसमें यदि नेपाल और तिब्बत से बहकर आने वाली नदियों से 2 करोड़ है.मी. पानी को भी जोड़ लें तो भारत में भू-सतह पर प्रवाहित होने वाले जल की मात्रा 18 करोड़ है.मी. है।

इस 18 करोड़ है.मी. जल प्रवाह का लगभग 15 करोड़ है.मी. या तो बहकर समुद्र में चला चाता है या कुछ पड़ोसी देशों में चला जाता है। शेष रहता है – 3 करोड़ है.मी. जल प्रवाह का लगभग 15 करोड़ है.मी. या तो बहकर समुद्र में चला जाता है या कुछ पड़ोसी देशों में चला जाता है। शेष रहता है – 3 करोड़ है.मी. पानी। इसमें से लगभग 1.5 करोड़ है.मी. पानी जलाशयों और तालाबों से संचित होता है जिसका लगभग 50 लाख है.मी. पानी भाप बनकर उड़ जाता है। नदियों के पानी में से लगभग 1.5 करोड़ है.मी. पानी का नहर आदि या सीधे पंपों द्वारा उपयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि भू-सतह पर उपलब्ध 18 करोड़ है.मी. में से हमें केवल 2.5 करोड़ है.मी. पानी मिलता है। ऐसा अनुमान है कि यदि पानी को संचित कर और सीधे पंपों द्वारा तथा नहर आदि निकालकर पानी का पूरा इस्तेमाल करें तो भी 10.5 करोड़ है.मी. पानी लगातार समुद्र में या पड़ोसी देशों में बहकर चला जाएगा।

ज़मीन के अंदर रिसकर जाने वाले 21.5 करोड़ है.मी. पानी में से 16.5 करोड़ है.मी. पानी मिट्टी में नमी के रूप में सुरक्षित रहता है। केवल 5 करोड़ है.मी. पानी ज़मीन के तल में बहने वाला जल बन जाता है। चतुर्वेदी और रॉजर्स (1985 : 29) जैसे वैज्ञानिकों के अनुसार ज़मीन के अंदर बहने वाले पानी (भू-जल) के उपयोग को काफ़ी बढ़ाया जा सकता है। ऐसा अनुमान है कि इस समय 6.7 करोड़ है.मी. भौम जल में से केवल 1.3 करोड़ है.मी. पानी का ही उपयोग होता है, जबकि 4.5 करोड़ है.मी. पानी नदी में बह जाता है और बाकी 90 करोड़ है.मी. पानी जलस्तर को ऊपर उठाता है तथा भाप बनकर उड़ता है और प्राणियों तथा पेड़-पौधों में से निकलने वाली भाप के रूप में निकल जाता है।

इनमें से भाप बनने और मिट्टी में जल रिसने की जैसी जलीय चक्र की प्रक्रियाओं पर हमारा कोई बस नहीं है। हाँ, 18 करोड़ है.मी. सतही प्रवाह के रूप में मिलने वाले जल की प्राप्यता, उसके नियंत्रण और विकास का विश्लेषण किया जा सकता है।

इस विश्लेषण को हाथ में लेने से पहले आइए हम भारत में बाढ़ और सूखे की स्थितियों के बारे में भी संक्षेप में विचार कर लें। हर वर्षा ऋतु में हमें अखबारों में देश के विभिन्न भागों में विनाशकारी बाढ़ और सूखे के बारे में विवरण मिलते हैं। उनमें देश के विभिन्न भागों में विनाशकारी बाढ़ और सूखे के बारे में विवरण मिलते हैं। उनमें देश के विद्यमान जल संसाधनों की मौसमी और स्थानिक विभिन्नताओं की ओर संकेत होता है। बाढ़ से खड़ी फ़सल, घर, संपत्ति को नुकसान होता है और उससे मानव तथा पशुओं की आबादी पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। भीषण बाढ़ से रेलमार्ग, सड़कें, संचार व्यवस्था और जन-सुविधाएँ नष्ट हो जाती है। इस प्रकार, इससे देश की आर्थिक क्रियाशीलता में अस्थिरता आती है। साथ ही, सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक संबंधों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार, सूखे का भी देश की आबादी पर भयंकर प्रभाव पड़ता है। इनका प्रभाव कितना अधिक पड़ेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि लोगों का अपनी परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन (adaptation) कितना है। भारत में लगभग कुल क्षेत्र का 16 प्रतिशत भाग सूखा-प्रवण है और देश की जनसंख्या का लगभग 11 प्रतिशत भाग सूखे के हालात से सीधे प्रभावित होता है (देखिए सेंट 1988 : 129-137 और मुरीश्वर व फर्नांडिस 1988 : 162-178)।

इसके अलावा, पानी के प्रदूषण की समस्या भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। मूल स्रोत से पानी लेकर उसका घरेलू, औद्योगिक और कृषि संबंधी कामों में इस्तेमाल करने के बाद इस इस्तेमाल किए

हुए पानी को फिर से पानी के मूल स्रोत में मिला दिया जाता है। इससे जल प्रदूषण की बड़ी समस्या उठ खड़ी होती है। खेती और उद्योगों में जल संसाधन के व्यापक उपयोग से और देश की बढ़ती आबादी तथा विकासात्मक क्रियाकलापों के कारण हमें युगों से चली आ रही बाढ़ और सूखे की समस्याओं के साथ अब जल प्रदूषण की समस्या का भी सामना करना पड़ेगा।

आइए, अब हम फिर पुराने विषय पर ध्यान केंद्रित करें और इस बात की परीक्षा करें कि किस प्रकार 18 करोड़ है.मी. अतिरिक्त जल का उपयोग सामान्यत: मनुष्यों और प्राणियों की उत्तरजीविता के लिए और विशेष रूप से भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था को बनाए रखने के लिया जाता है। संक्षेप में, हमें यह मालूम करना होगा कि क्या उपलब्धता का यह अर्थ है कि उतनी ही मात्रा में पानी की सुलभता भी है।

सोचिए और करिए 1

भारत के नक्शे में देखें और पहचानें कि कौन-कौन सी नदियाँ हिमालय के जलाशय वाले (watershed) क्षेत्र में स्थित पड़ोसी देशों से निकलकर भारत में आती हैं। ये नदियाँ कहाँ-कहाँ से गुजरती हैं – इस पर 250 शब्दों की एक टिप्पणी लिखिए।

26.2.2 घटी सुलभता

छठी पंचवर्षीय योजना (180-85) के प्रलेख (1981) के अनुसार, गाँवों की केवल 10 प्रतिशत आबादी को स्वच्छ पेय जल उपलब्ध था और देश की केवल 30 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध थी। कुल 12.3 करोड़ हैक्टेयर फ़सल क्षेत्र में से 70 प्रतिशत भाग आज भी वर्षा द्वारा होने वाली सिंचाई पर निर्भर है। विशेषज्ञों के अनुमान के अनुसार, सिंचाई के क्षेत्र में और अधिक विकास के बावजूद भारत का 50 प्रतिशत फसली क्षेत्र वर्षा पर आश्रित कृषि व्यवस्था वाले सभी किसानों को कृषि करने के लिए अतिरिक्त जल उपलब्ध हो। वास्तव में, नीचे दिए गए कारणों से, बहुसंख्यक लोगों की जल संसाधनों तक पहुँच वर्तमान समय में बहुत कम हो गई है :

क) भू-जल (groundwater) के स्तर में कमी आने के कारण छोटे किसानों को खुले कुओं और गाँवों के तालाबों के पानी पर निर्भर रहना पड़ता है। भू-जल स्तर में किसी भी प्रकार की कमी से उन्हें सिंचाई की सुविधा से वंचित होना पड़ता है।

ख) कुछ दशक पूर्व तक गाँवों में जन-सामान्य के इस्तेमाल के जल संसाधनों को भली-भाँति सुरक्षित रखने की व्यवस्था थी लेकिन अब इसकी कोई परवाह नहीं करता। इसके फलस्वरूप छोटे किसानों को न तो साल में होने वाली अपनी एक मात्र फसल के लिए पर्याप्त पानी मिलता है और न ही उनके परिवार को घरेलू उपयोग के लिए पानी उपलब्ध होता है। इसके अलावा, ऐसा अनुमान है कि भारत की नदियों का 70 प्रतिशत जल, जिसका पीने के लिए इस्तेमाल होता है, प्रदूषित है। दूसरी ओर, हर साल हज़ारों की संख्या में जल स्रोत सूखते जा रहे हैं।

ग) पर्यावरण के विनाश के कारण देश का जल-संतुलन बिगड़ गया है। अब सूखे और बाढ़ का प्रकोप बार-बार तथा और अधिक तीव्रता से होने लगा है। दूसरे शब्दों में, यह अवश्य संभव है कि बड़े किसानों के लिए सिंचाई जल की उपलब्धता बढ़ी हो, परंतु जहाँ तक अधिकांश लोगों का सवाल है, स्थिति में कोई खास फ़र्क नहीं आया है। अधिकांश अन्य संसाधनों की तरह, इस संसाधन पर भी थोड़े से लोगों का नियंत्रण है और अब लगातार इस पर मध्यम वर्ग और बड़े किसानों का अधिकाधिक एकाधिकार होता जा रहा है।

इस इकाई में हमें उस प्रक्रिया को देखना है जिसके कारण आज यह स्थिति बनी है और इसका बहुसंख्यक समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसी संदर्भ में हम **राष्ट्रीय जल नीति, 1987** को

समझने की कोशिश करेंगे कि किस सीमा तक यह नीति इस स्थिति से निपटने की कोशिश कर रही है। दोनों बातों को समझने के लिए पहले हम ब्रिटिश शासन से पूर्व के भारत की जल-प्रबंध प्रणालियों का अध्ययन करेंगे और उसके बाद ब्रिटिश शासन के दौरान और आज़ादी के बाद के भारत में जल नीति पर चर्चा करेंगे जल प्रबंध प्रणालियों पर विचार करने से पहले आप क्यों न बोध प्रश्न के उत्तर लिखें।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वाक्यों के आगे सही या ग़लत पर निशान लगाइए :

   क) बाँधों की संख्या में वृद्धि के कारण भारत के प्रत्येक नागरिक को समान रूप से पानी सुलभ होने लगा है। (सही/गलत)

   ख) भू-जल स्तर में गिरावट आने के कारण छोटे किसानों को जल की उपलब्धता में कमी आई है। (सही/गलत)

   ग) देश के सभी गाँवों में पानी सुलभ है। (सही/गलत)

   घ) गाँवों में तालाबों की देखभाल ठीक से नही की जा रहीं है। (सही/गलत)

2) भारत में बाढ़ या सूखा इतनी जल्दी-जल्दी क्यों होते हैं? एक पंक्ति में उत्तर दीजिए।

   .....

   .....

26.3 ब्रिटिश-पूर्व भारत में जल-प्रबंध प्रणालियाँ

इस भाग में पहले हम भारत में विभिन्न प्रकार की जल-प्रबंध प्रणालियों पर चर्चा करेंगे। उसके बाद प्राचीन भारत में ''जल को सार्वजनिक संपत्ति समझा जाता था'' इस संभावना की छान-बीन करेंगे। इस चर्चा के बाद जन-साधारण के लिए जल की सीमित सुलभता के बारे में विचार करेंगे। अंत में, जल संसाधन की वितरण प्रणाली और उसके अनुरक्षण में लोगों की सहभागिता की प्रकृति को देखेंगे।

26.3.1 विभिन्न जल-प्रबंध प्रणालियाँ

भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जल-प्रबंध प्रणालियों में अंतर दिखाई देता है। इसके कारण पूर्व से पश्चिम तक वर्षा की मात्रा में अंतर होना है। पूर्वी भारत में बहुत अधिक वर्षा होती है। उत्तर-पूर्वी भारत के कुछ हिस्सों में प्रति वर्ष 4000 मि.मी. तक वर्षा होती है। जैसे-जैसे हम पश्चिम की ओर बढ़ें, वर्षा की मात्रा क्रमश: कम होती जाती है और फिर राजस्थान तक पहुँचते-पहुँचते मालूम होता है कि वहाँ वर्षभर में केवल लगभग 800 मि.मी. वर्षा होती है। भारत के अधिकांश भागों में प्रति वर्ष औसतन 1000 मि.मी. या उससे कम वर्षा होती है। पूरे भारत में प्रति वर्ष औसत वर्षा 1150 मि.मी. है।

वर्षभर की अधिकांश वर्षा मानसून के कुछ ही महीनों में हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि बाकी आठ महीनों में ही जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि बाकी आठ महीनों में भारत के अधिकांश भागों में लोगों को तालाबों, जोहड़ों, कुँओं, बाँधों और नदियों में संचित जल पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के उत्तर जीवन के लिए इन स्रोतों की देखभाल और पानी का न्यायसंगत वितरण और भी आवश्यक हो जाता है।

अधिकांश भारत की स्थिति उन देशों से भिन्न है जो विषुवत क्षेत्र के निकट स्थित हैं, उदाहरण के तौर पर– फिलिपीन्स में पूरे देश में लगभग समान वर्षा होती है और हर मास थोड़ी-बहुत

वर्षा ज़रूर हो जाती है। इसके कारण छोटे नदी-नालों में भी वर्षभर पानी भरा रहता है। इसलिए फिलिपीन्स में केवल वितरण के लिए ही सहयोग की अपेक्षा होती है तथा वितरण प्रणाली यानी नहरों की देखभाल की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, भारत में सहयोग की शुरुआत टैंकों, बांधों, तालाबों और कुँओं आदि में पानी को जमा करने होती है क्योंकि वर्षा-रहित महीनों में ये ही पानी के मुख्य स्रोत होते हैं। यहाँ इस प्रकार नियमित रूप से पानी उपलब्ध नहीं हो वहाँ प्रकृति ने वनों के माध्यम से वैकल्पिक व्यवस्था भी कर दी है। वन मानसून के पानी को रोक रखते हैं, और उसे धीरे-धीरे नदियों, चश्मों और भू-जल व्यवस्था को देते रहते हैं। लोगों ने पानी को इकट्ठा करके रखने के लिए कुओं, तालाबों और टैंकों की व्यवस्था कर ली है। इसलिए जल-प्रबंधन की परंपराएँ केवल पानी के वितरण के इर्द-गिर्द नहीं घूमतीं अपितु उसका संबध पानी की भंडारण सुविधाओं की देख-रेख से भी है। यही बात है कि भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा जल की सुलभता का एक विशिष्ट विन्यास बन गया है। आइए, हम इसकी विशिष्टताओं पर एक नज़र डालें। यहाँ विशिष्टता यह है कि अन्य संसाधनों की तरह पानी मनुष्य के जीवन के लिए एक आवश्यक तत्त्व है इसलिए इसकी सभी के लिए पाना आवश्यक है। यही कारण है कि हमें विभिन्न प्रकार की ऐसी व्यवस्थाएँ दिखाई देती हैं जिनसे यह बात पक्की हो सके कि ग़रीब से ग़रीब और समाज के कमज़ोर वर्गों तक सबको पानी मिल सके।

26.3.2 पानी: सार्वजनिक सम्पत्ति के रूप में

पुरातत्त्वीय साक्ष्य और ऐतिहासिक अभिलेखों से मालूम होता है कि भारत में पेयजल उपलब्ध कराने और सिंचाई आदि के लिए कई जल परियोजनाएँ थीं। उनके अलग-अलग आकार थे, छोटे कुँओं, टैंकों से बड़ी नहरों तक। भारत में, मिट्टी के बाँधों की सहायता से छोटे जलाशय बनाने की प्रौद्योगिकी पर्याप्त पुरातन काल से चली आ रही है। देश के उत्तरी और दक्षिणी भागों में टैंकों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था भी काफ़ी प्राचीन काल से प्रचलित है।

अनुमानत: यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में पानी को सार्वजनिक संपत्ति समझा जाता था। या यों कहें कि उपलब्ध पानी पर पूरे समुदाय का स्वामित्व होता था और सभी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उसका इस्तेमाल करते थे। लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि प्राचीन काल में प्रत्येक व्यक्ति को जल संसाधन का न्यायसंगत भाग प्राप्त था और ब्रिटिश शासन से पूर्व जल प्रबंध में भागीदारी की कोई परंपरा रही थी। हमारे सामने इस आदर्श स्थिति का कोई साक्ष्य नहीं है। यह तर्क ज़रूर दिया जा सकता है कि संसाधन सार्वजनिक संपत्ति होते हैं या होने चाहिए तथा पानी जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। अत: इसे पाने के लिए पानी के साथ पुण्य का भाव जोड़ा गया है। पानी देने में पुण्य होता है – यह अवधारणा किसी एक धर्म की विशेषता नहीं। यह बात लगभग सभी धर्मों में पाई जाती है। यहूदी और मुसलमान इसे नए जीवन का प्रतीक के रूप में करते हैं। हिन्दूओं में गंगा जल के पावन होने की परंपरा से लोग भली-भाँति परिचित हैं। अधिकांश जनजातीय कबीले पानी में दिव्य अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। इन बातों से पता चलता है कि पानी को पुण्य-पावन का स्वरूप प्रदान करके सर्वसामान्य के लिए पानी की सुलभता को पक्का करने का प्रयास किया गया है। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि चूँकि जल प्रत्येक व्यक्ति को स्वभाविक रूप से प्राप्त नहीं होता था, परंतु जल मानव के जीवन धारण के लिए महत्त्वपूर्ण घटक है इसलिए किसी न किसी तरह इसे सबको सुलभ कराना आवश्यक है। इसलिए पानी को पुण्य-पावन की भावना से जोड़ दिया गया। हमारे समाज में यह एक तरह से धार्मिक विश्वास का अंश है कि किसी प्यासे को पानी पिलाना पवित्र और पुण्य कार्य होता है।

इसके अलावा, पानी को सार्वजनिक संपत्ति मानने की अवधारणा का, निश्चय ही, यह अभिप्राय नहीं है कि यह सर्वसुलभ संसाधन है। अधिकांश जनजातीय कबीलों में वन के उत्पाद जैसे संसाधनों को उनके वर्ग की सामूहिक संपत्ति माना जाता है और उस वर्ग के सदस्य उसका खुले

रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं। परंतु यहाँ भी ज़रूरी नहीं कि दुनिया भर के सारे जनजातीय कबीले इस बात का पालन करते हैं। भारत में भी बहुत-से जनजातीय समूह उच्च और निम्न वर्गों और उप-वर्गों में बँटे हुए हैं और उसी के अनुसार उनमें विभिन्न संसाधनों की सुलभता भी समान वितरण पर आधारित न होकर वर्ग के आधार पर है। अगले उपभाग में विभिन्न जातीय-समुदायों में जल संसाधन की सुलभता को देखा जा रहा है।

26.3.3 सीमित सुलभता

अधिकांश जातीय समुदायों में शक्तिशाली लोगों को ही विभिन्न संसाधन सुलभ हैं लेकिन कमज़ोर वर्गों को इनसे वंचित रहना पड़ता है। परंपरागत रूप से जल संसाधनों का नियंत्रण और प्रबंध मुख्य रूप से ज़मींदार या भूस्वामी वर्ग तक सीमित था क्योंकि ये ही गाँवों में अधिक शक्तिशाली लोग थे। निम्न जाति के लोगों को और अन्य भूमिहीन वर्गों के लोगों को जल प्रबंध से वंचित रखा जाता था। गाँवों के ज़मींदार परिवारों के दायरे में निश्चय ही वितरण की न्यायसंगत व्यवस्था थी। लेकिन जिनके पास गाँव में ज़मीन या दूसरी संपत्ति नहीं होती थी उनके हाथ में किसी प्रकार का अधिकार नहीं होता था। उन्हें निर्णय करने और जल प्रबंध की व्यवस्था से अलग रखा जाता था। इसलिए उन्हें विभिन्न संसाधनों की न्यायसंगत सुलभता से भी परे रखा जाता था। इसलिए उन्हें विभिन्न संसाधनों की न्यायसंगत सुलभता से भी परे रखा जाता था। इसलिए उन्हें निर्णय करने और जल प्रबंध की व्यवस्था से अलग रखा जाता था। इसलिए उन्हें विभिन्न संसाधनों की न्यायसंगत सुलभता से भी परे रखा जाता था। दूसरे, सामान्यत: पानी के एक ही स्रोत का उपयोग पेयजल के रूप में और सिंचाई के लिए किया जाता था। घरेलू उपयोग के लिए जल की नियमित आपूर्ति का दायित्व गृहिणी का होता था और आदमी मुख्य रूप से कृषि व्यवस्था के कार्य में व्यस्त रहते थे। इसलिए वे केवल खेतों की सिंचाई के लिए पानी की चिंता करते थे। जल प्रबंध और दूसरे कार्यों से संबंधित सामाजिक संगठनों पर भी पुरुषों का नियंत्रण होता था। इस तरह, सिंचाई के लिए जल प्रबंध व्यवस्था में अधिकाधिक भागीदारी बनाए रखी जाती थी लेकिन घरेलू उपयोग के जल के बारे में संगठन व्यवस्था की बहुत कम ज़रूरत समझी जाती थी। (सेन गुप्त 1991 : 119-120)

संक्षेप में, उपर्युक्त व्यवस्था को जनजातियों के बीच पाई जाने वाली न्यायसंगत व्यवस्था की तरह सर्वसामान्य की संपत्ति नहीं कहा जा सकता है। भारत में जातीय आबादी वाले गाँव असमान अधिकार वाले समुदायों के संगठन हैं। इन गाँवों में अधिक शक्तिशाली जातीय वर्गों के पास संपत्ति होती है और अधिकांश मामलों में निर्णय करने का अधिकार भी उन्हें ही होता है। इसलिए वे इस बात को सुनिश्चित कर लेते हैं कि उनकी अपनी जाति के लोगों में न्यायसंगत वितरण हो – चाहे दूसरे लोग उससे वंचित ही रहें। इसके अलावा, भारत के अधिकांश सामाजिक वर्गों में पुरुषों का प्रभुत्व है तथा महिलाओं के नज़रिए को ख़ास महत्त्व नहीं दिया जाता। इस दृष्टि से, परंपरागत उच्च जाति वाले पुरुष प्रधान भारत के गाँवों में महिलाओं के लिए पूरे गाँव की सामूहिक संपत्ति नहीं थी। यह तो केवल शक्तिशाली जातियों या उच्च वर्ग की संपत्ति थी।

यदा-कदा इन उच्च वर्गों के कुछ शक्तिशाली व्यक्तियों ने संसाधनों पर एकमात्र अपना नियंत्रण करने की कोशिश की। सामंतों और राजाओं ने अपने उपयोग के लिए तालाबों तथा सिंचाई के संसाधनों का निर्माण कराया। कुछ व्यक्तियों द्वारा एकाधिकार की प्रवृत्ति केवल पानी के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था। इन लोगों ने कुछ जंगलों और दूसरी संपत्तियों पर भी निजी उपयोग के लिए कब्ज़ा कर लिया।

26.3.4 वितरण में सहभागिता

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि आम तौर पर एक ही स्रोत से उपलब्ध पानी का उपयोग घरेलू कामों और सिंचाई के लिए किया जाता था। इन दोनों ही मामलों में न्यायसंगत वितरण

के लिए समाज से मान्य तरीकों की ज़रूरत थी। पीने के पानी की न्यायसंगत सुलभता के लिए समाज से मान्य तरीका क्या था, इसकी पर्याप्त जानकारी नहीं है।

जहाँ तक सिंचाई व्यवस्था का संबंध है, मुग़ल काल में लगभग 20 बड़े बाँधों का निर्माण कराया गया था। उनका आज भी इस्तेमाल हो रहा है (सी.डब्ल्यू.एस. 1990)। ब्रिटिश शासनकाल से पूर्व सबसे अधिक जानी-मानी सिंचाई प्रणाली कावेरी पर बना बांध है जो **ग्रांड एनिकट** के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिंचाई व्यवस्था का उपयोग आज भी किया जा रहा है। अपने स्वर्ण युग में इससे लगभग 2,40,000 हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती थी। उत्तर प्रदेश में भी नहरों की अच्छी व्यवस्था है जिनका निर्माण मुग़ल काल में हुआ था। इन बाँधों और नहरों का निर्माण राज्य की सहायता से किया गया था। इन बाँधों और नहरों का निर्माण राज्य की सहायता से किया गया था तथा पानी के वितरण के लिए समुचित वितरण व्यवस्था थी। लेकिन, अधिकांशत: इस वितरण के विस्तृत स्वरूप की जानकारी नहीं है।

हमें केवल इतनी ही जानकारी है कि अधिकांश सिंचाई तालाबों, बाँधों, टैंकों और कुँओं से और कहीं-कहीं नदी के जल के जल से की जाती थी। 1880 के दशक में तैयार की गई एक सूची से पता चलता है कि उस समय मद्रास प्रेसिडेंसी के **रैयतवाड़ी** क्षेत्र में कम से कम 32,000 तालाब थे। इसके अलावा, इसके **ज़मींदारी** क्षेत्र में और भी बहुत से तालाब थे। इसी तरह देश में अन्य भागों में भी तालाब थे। इसी तरह देश के अन्य भागों में भी तालाब थे। इन तालाबों और बहुत-सी नहरों की व्यवस्था ''ग्राम सिंचाई समुदाय'' यानी उपभोक्ता संगठन के द्वारा की जाती थी। इन भागीदारी प्रबंध व्यवस्था में उपभोक्ताओं के लिए जल की सुलभता को सुनिश्चित किया गया था। ऐसा अनुमान है कि ब्रिटिश शासन से पूर्व तालाबों और नहरों से आज के 4 करोड़ हैक्टेयर की तुलना में लगभग 70 लाख हैक्टेयर कृषि-योग्य भूमि की सिंचाई की जाती थी।

देश के विभिन्न भागों में निर्मित तालाबों (टैंकों) के प्रकारों में अंतर है। मोटे तौर पर, पश्चिमी भारत में विशेष रूप से गुजरात के समुद्र तट से दूर वाले और अन्य क्षेत्रों में छोटे-छोटे टैंक थे और इनका उपयोग केवल पाँच-छह परिवार करते थे। इन परिवारों द्वारा इसके उपयोग के लिए ग्राम पंचायत द्वारा स्वीकृत कुछ नियम थे। इनमें से अधिकांश टैंकों में इनके अपने जल स्रोतों से पानी भरा जाता था। इसलिए स्थानीय विनियमों में इस बात की व्यवस्था थी कि प्रत्येक परिवार के द्वारा पानी का इस्तेमाल करने के बाद इसे कई घंटों तक भरने के लिए खुला छोड़ दिया जाए।

भारत के अधिकांश दूसरे हिस्सों में, इनसे कहीं बड़े टैंकों के द्वारा 100 हैक्टेयर और कहीं-कहीं तो दो या तीन हजार हैक्टेयर से भी अधिक भूमि की सिंचाई की जा सकती है। इसलिए ऐसे एक-एक टैंक से 100 से भी अधिक परिवार सिंचाई कर सकते हैं और कहीं-कहीं तो इसका उपयोग कई-कई गाँवों द्वारा किया जा सकता है। पानी के न्यायसंगत वितरण के लिए सभी के द्वारा वितरण के नियमों का पालन और पारस्परिक सहयोग नितांत आवश्यक है। हाल ही में पारस्परिक सहयोग के अभाव के कुछ मामले प्रकाश में आए हैं। इनमें कुछ किसानों ने धान की संकर किस्म की ज्यादा खेती शुरू कर दी या वाणिज्य फसल बोनी शुरू कर दी जिसे पहले से ज्यादा पानी की ज़रूरत होती है। कुछ ऐसे मामले भी देखने में आए हैं जिनमें कुछ बड़े किसान उनके लिए निर्धारित पानी से ज़्यादा पानी का उपयोग करते हैं। यहाँ दो गाँवों के झगड़े भी देखने में आए हैं। इसका कारण यह है कि कुछ टैंक एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं – यदि एक गाँव के लोग इसकी देखभाल में लापरवाही बरतते हैं या निर्धारित हिस्से से अधिक पानी का उपयोग करते हैं तो इसका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है।

न्यायसंगत ढंग से पानी के वितरण की परंपरागत पद्धति अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग थी। लगभग संपूर्ण तमिलनाडु में एक अधिकारी होता था जिसे कहीं **नीरपैची** और कहीं

मदैकुडुम्बन कहते थे। इसका काम पानी की मात्रा के नियतन और वितरण का पर्यवेक्षण करना होता था। सामान्यत: नीरपैची निम्न जाति का होता था जिसकी अपनी कोई ज़मीन नहीं होती थी, इसलिए उसकी ज़्यादा पानी लेने में कोई रुचि नहीं होती थी। वह, वास्तव में, गाँव का एक कर्मचारी या नौकर होता था। उसकी जिम्मेदारी या देखने की होती थी कि समिति द्वारा तैयार की गई योजना के अनुसार सबको पानी उपलब्ध हो। चूंकि उसे सभी परिवारों से पैसा मिलता था, इसलिए उसे यह देखना होता था कि सभी को पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार पानी की मात्रा उपलब्ध हो। आंध्र प्रदेश के कुछ भागों में **नीरपैची** को **नीरू कट्टुदर** कहा जाता था। उसके कार्य का पर्यवेक्षण **तेन्नाडेड्डा** द्वारा किया जाता था **नीरूकट्टुदुर** गाँव का कर्मचारी होता था और उसे किसानों द्वारा अनाज आदि ज़रूरी सामान दिया जाता था। जल के समुचित वितरण को देखने के लिए किसानों के प्रतिनिधि के रूप में तेन्नाडेड्डा की नियुक्ति की जाती थी (सेनगुप्त 1991 : 97-120)।

तमिलनाडु ओर आंध्र प्रदेश जैसे कम पानी वाले क्षेत्रों में ऐसा नियंत्रण आवश्यक था। दूसरी ओर, उत्तरी बिहार के ''गया'' जैसे क्षेत्र में जहाँ बहुत अधिक पानी उपलब्ध है, ऐसे गहन पर्यवेक्षण की ज़रूरत नहीं थी। यहाँ किसानों को सिंचाई-तंत्र के लिए पानी की व्यवस्था की देखभाल करनी पड़ती थी क्योंकि पानी के वितरण की कोई समस्या नहीं थी।

सोचिए और करिए 2

अपने क्षेत्र में या ऐसे आपके परिचित क्षेत्र में परंपरागत जल वितरण और अनुरक्षण की आज भी विद्यमान प्रणाली के विषय में जानकारी इकट्ठी कीजिए। अगर आपको किसी भी ऐसी प्रणाली की जानकारी नहीं है तो आप किसी बड़ी उम्र के व्यक्ति से जिसकी आयु 60 से अधिक हो, साक्षात्कार कीजिए। शायद वह आपको ऐसी किसी व्यवस्था के बारे में बता सके। ऊपर दिए किसी भी स्रोत से प्राप्त सूचना के आधार पर ब्रिटिश शासनकाल से पूर्व के भारत में परंपरागत जल वितरण और देखभाल की व्यवस्था के बारे में 250 शब्दों की एक टिप्पणी लिखिए।

26.3.5 अनुरक्षण में सहभागिता

जल वितरण को अधिक सार्थक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि टैंकों की ठीक देखभाल हो और वर्षा के मौसम में उन्हें फिर से भर दिया जाए। टैंकों की देखभाल के लिए मुख्य काम हर साल उसमें गाद निकालने का होता है। कहीं-कहीं यह जरूरी होता है कि उसके पुश्तों को फिर से मज़बूत किया जाए ताकि वह आने वाली वर्षा ऋतु में पानी को जमा कर सके। प्रत्येक क्षेत्र में यह काम तालाब से निकलने वाली गाद में वहाँ के लोगों की रुचि पैदा करके किया जाता है। ये तालाब में से अपनी कई दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी गाद निकालते थे।

आरंभ में, अधिकांश समुदायों में तालाब से गाद निकालने में समय से पहले साल में एक बार उत्सव दिन मनाया जाता था। उस दिन सब गाँव वाले एक-साथ आकर तालाब में मछली पकड़ते थे। इसके बाद गाद निकालने का मौसम शुरू होता था। देश के हर भाग में तालाब से निकलने वाली गाद का कुछ न कुछ उपयोग होता है। दक्षिण भारत के अधिकांश क्षेत्रों में इस गाद का इस्तेमाल खेतों में खाद के रूप में किया जाता था। भीतरी कर्नाटक के बहुत से हिस्सों में, नारियल के पेड़ों में हर साल तालाब से निकलने वाली गाड़ी भर गाद की एकमात्र खाद डाली जाती है। इन क्षेत्रों में लोगों की आय का मुख्य साधन नारियल है। इसलिए, सभी गाँव वालों की रुचि तालाब से गाद निकाल कर नारियल की खेती में उपयोग करने में होती थी, क्योंकि इस पर उनकी रोज़ी-रोटी निर्भर होती थी। बंगाल और अधिकांश पूर्वी भारत में गाद निकालने के समय मे ही लोग घरों की मरम्मत और घर बनाने का काम करते हैं और इसके बाद विवाहों का समय भी आ जाता है। इस प्रकार गाद का उपयोग गाँव के पुराने मकानों की मरम्मत के

लिए और जिन युगलों का विवाह होने वाला होता था, उनके आवास के लिए नए मकानों के निर्माण के लिए किया जाता है (सी.एस.ई. 1987)।

यहाँ यह भी बता देना उपयुक्त होगा कि गाद निकालने से मिलने वाला लाभ और काम का अनुपात न्यायसंगत नहीं थे। गाद निकालने का ज़्यादातर काम भूमिहीन खेतिहर मज़दूरों द्वारा किया जाता था। उन्हें इसके बदले में पेयजल के अलावा कोई लाभ नहीं मिलता था। इनमें अछूत कहे जाने वाले वर्ग को इस लाभ से भी वंचित होना पड़ता था। उन्हें उच्च जातियों के लिए सुरक्षित तालाब से पीने के लिए पानी भी नहीं निकालने दिया जाता था। उन्हें अपने लिए गाँव की तलैया से ही पानी लाना पड़ता था। इस तलैया में गाँव के समृद्ध और शक्तिशाली वर्ग की कोई दिलचस्पी नहीं होती थी इसलिए उनकी देखभाल भी ठीक से नहीं होती थी।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जल संसाधन के वितरण और उसकी प्रबंध व्यवस्था में भागीदारी तो थी परंतु यह केवल गाँव के शक्तिसंपन्न वर्ग तक सीमित थी। जो लोग उतने अधिकारसंपन्न नहीं थे, इनमे उच्च वर्ग की महिलाएँ भी शामिल हैं और ऐसे भूमिहीन लोग जो अधिकांशत: नीची जातियों के थे, उनके लिए पानी की प्राप्यता सीमित थी। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब तक पानी पूरे समुदाय का संसाधन था तो किसी न किसी रूप में उसका लाभ प्रत्येक को मिलता ही होगा, चाहे उसका वितरण सभी समुदायों के लिए पूर्णतया न्यायसंगत न हो। इस असंतोषजनक स्थिति में भी परिवर्तन हुए, जिन्हें समझने के लिए हमें ब्रिटिश शासनकाल की और आज़ादी के बाद के समय की जल नीति की समीक्षा करनी होगी। अगले भाग यानी 26.4 में हम इसी विषय पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

बोध प्रश्न 2

1) नीचे दिए वाक्य सही हैं या गलत, उपयुक्त पर निशान लगाइए :

   क) अंग्रेजों के भारत में आने के साथ सिंचाई-व्यवस्था आरंभ हुई। (सही/गलत)

   ख) अंग्रेजों के आने से पूर्व सिंचाई के मुख्य साधन टैंक (तालाब) थे। (सही/गलत)

2) नीचे दिए गए प्रत्येक विवरण के लिए नीचे दिए विकल्पों में से सही उत्तर चुनिए :

   क) अंग्रेजों के आगमन से पहले अधिकांश सिंचाई-तंत्र की प्रबंध व्यवस्था

      i) राज्य द्वारा की जाती थी।

      ii) गाँव के भूपतियों के द्वारा की जाती थी।

      iii) उपभोक्ता-समितियों के द्वारा की जाती थी।

   ख) सिंचाई के साधनों से एक ऐसी प्रबंध व्यवस्था विकसित हुई जो

      i) केवल सिंचाई के जल के वितरण का ध्यान रखती थी।

      ii) पेयजल और सिंचाई का ध्यान रखती थी।

      iii) केवल पेयजल का ध्यान रखती थी।

   ग) ब्रिटिश शासनकाल से पूर्व की सिंचाई व्यवस्था में निम्नलिखित के लिए समान रूप से पानी मिलता था

      i) पुरुषों और स्त्रियों को

      ii) सभी गाँव वालों को

      iii) केवल ज़मींदार (भूस्वामी) जातियों को

3) भारत में परंपरागत जल वितरण और देखभाल की व्यवस्था का वर्णन सात पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

26.4 औपनिवेशिक और समकालीन भारत में जल नीति

जहाँ तक बहुसंख्यक समाज के लिए पानी की सुलभता का प्रश्न है, ऐसा लगता है कि भारत की जल नीति का लाभ शक्तिशाली और धनी लोगों को ही मिला है। ब्रिटिश शासन के दौरान जल नीति साम्राज्य के लाभ के लिए थी। बाद में स्वतंत्रता मिलने के बाद, संसाधन की उत्पादकता बढ़ाने के लिए कार्यनीतियाँ तैयार की गईं। इनमें भी विकास के मुख्य लाभ धनी एवं समृद्ध लोगों को ही मिले।

26.4.1 ब्रिटिश जल नीति

ब्रिटिश सरकार की जल नीति का ध्यान केवल सिंचाई पर था। यह बात नहीं कही जा सकती कि उनकी पेयजल के बारे में कोई नीति थी। उनक सिंचाई की नीति ब्रिटिश भूमि व्यवस्था (बंदोबस्त) से संबंधित थी। इसका प्रयोजन उपज़ (देखिए इकाई 25) के बजाय राजस्व अर्जित करना था। अधिकांश पूर्वी भारत में 1793 की स्थायी भूमि व्यवस्था का प्रयोजन भी ब्रिटिश शासकों के लिए स्थायी राजस्व को सुनिश्चित करना था। इसलिए उन्होंने स्थायी रूप से भू-राजस्व नियत कर दिया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सरकारी की सिंचाई को बढ़ावा देने में कोई दिलचस्पी नहीं रही। सिंचाई को उन्होंने ज़मींदारों के भरोसे छोड़ दिया। अब ज़मींदार व्यावहारिक स्तर पर केवल कर इकट्ठा करने वाला बन गया। उसे अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाली ज़मीन को विकसित करने में कोई रुचि नहीं रही। काश्तकार भी उनकी ज़मीन की उपज कितनी भी क्यों न हो। काश्तकार को उपज का 50 से 65 प्रतिशत ज़मींदार को देना पड़ता था। अब उसके पास ज़मीन के विकास के लिए पैसा लगाने की गुंजाइश ही कहाँ रहती थी। लेकिन जब उत्तर भारत उसके अधिकार में आ गया तो ब्रिटिश शासकों को कई चालू सिंचाई प्रबंध मिल गए। इसके अलावा, बंगाल की स्थायी भूमि व्यवस्था के अनुभव के आधार पर उन्होंने यहाँ स्थायी तौर पर राजस्व की राशि नियत नहीं की। इसलिए उस क्षेत्र में नहरों की देखभाल और कहीं-कहीं उनका विस्तार करना भी संभव हुआ। दक्षिण और पश्चिम भारत में अंग्रेज़ों ने धीरे-धीरे छोटे-छोटे इलाकों पर कब्ज़ा किया और उन्हें फिर मद्रास और बंबई की प्रेसिडेंसियों के साथ छोड़ दिया। इन क्षेत्रों में भूमि व्यवस्था पूर्वी और उत्तरी क्षेत्रों को दी जाती थी जो सबसे ऊँची बोली बोलता था, और वह उसे शिकमी पट्टे पर काश्तकार को दे सकता था। ये कृषक सीधे सरकार व्यक्तिगत स्तर पर कृषकों (रैयत) को ठेके पर ज़मीन देती थी। ये कृषक सीधे सरकार को लगान देते थे। इसे रैयतवाड़ी पद्धति कहते थे। सरकार द्वारा टैंकों और नहरों जैसे सामान्य संसाधनों की देखभाल की ज़िम्मेदारी केवल थोड़े से व्यक्तियों को नहीं सौंपी जा सकती थी। इसके अलावा, पहले से उपयोग में आने वाले ग्रैंड

एनिकट तथा अन्य सिंचाई-प्रबंधों के अनुरक्षण की भी व्यवस्था करनी थी। केवल मद्रास प्रेसिडेंसी में 50,000 कि.मी. से अधिक लंबे पुश्तों की देखभाल की जाती थी।

इस व्यवस्था के लिए ब्रिटिश शासकों ने सिंचाई विभाग की स्थापना की क्योंकि वे परंपरागत सिंचाई समुदायों को स्वीकार नहीं करना चाहते थे। लेकिन ग्रेंड एनिकट की देखभाल के लिए ब्रिटिश इंजीनियरों को देसी प्रौद्योगिकी को सीखना पड़ा क्योंकि उनका इंजीनियरिंग का मॉडल यहाँ उपयोगी नहीं था। इसके अलावा, सिंचाई व्यवस्था की कम कीमत पर देखभाल सुनिश्चित करने और देसी प्रौद्योगिकी को सीखने के लिए उन्हें स्थानीय लोगों की मदद लेनी पड़ी। इसलिए, दक्षिण भारत में लोगों की सहभागिता से एक नए मॉडल के उभरकर सामने आने की संभावना दिखाई दे रही थी।

लेकिन 1860 और 1921 के बीच सिंचाई व्यवस्था को (राज्य या प्रांत के अधिकार से मुक्त करके) केंद्र के अधीन कर दिया गया। इसी समय के दौरान ब्रिटिश इंजीनियरों ने उत्तर भारत की सिंचाई व्यवस्था को अपने हाथ में ले लिया। उनके अनुसार सिंचाई व्यवस्था की देखभाल लोगों की सहायता की ज़रूरत नहीं। इन वर्षों के दौरान इस मॉडल को पूरे देश पर लागू कर दिया गया। इसके साथ ही सिंचाई व्यवस्था के लिए तथाकथित वैज्ञानिक प्रबंध की शुरुआत हुई और इस क्षेत्र में बहुसंख्यक लोगों की पहुँच कम हो गई। इसके साथ लोगों की सहभागिता भी कम हो गई और टैंकों की देखभाल पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। (फिर भी कुछ न कुछ देखभाल होती रही क्योंकि लोगों को इन टैंकों की ज़रूरत थी।) प्रति वर्ष 30,000 से भी अधिक टैंकों में से कुछ टैंकों पर इसका बुरा असर पड़ा। धीरे-धीरे इसका प्रभाव बढ़ता गया और छोटे किसानों की पानी के अपने स्रोत पर पहुँच कम होने लगी।

26.4.2 स्वाधीनता के बाद जल नीति

देश की आबादी के साथ योजनाबद्ध विकास के युग का श्रीगणेश हुआ। उसी के अनुसार औद्योगिक, भूमि, वन और जल संबंधी नीतियों को भी परिवर्तित करना पड़ा। इन नीतियों का आधार ज़्यादा से ज़्यादा उत्पादन करने का सिद्धांत था। पंचवर्षीय योजनाओं में बार-बार कहा गया कि उत्पादकता और वितरणकारी न्याय को राष्ट्रीय विकास से जोड़ना होगा। इस प्रकार पेयजल की सुलभता, सूखा प्रवण क्षेत्रों का विकास और छोटे किसानों का विकास-जल प्रबंध की दोहरी व्यवस्था के हिस्से बन गए।

दूसरे संसाधनों की तरह, जल संसाधन की नीति के निर्माण में भी विभिन्न क्षेत्रों का प्रभाव अभिलक्षण होता है। जब कभी परस्पर विरोधी बलों का दबाव पड़ता है तो प्राय: सबसे अधिक शक्तिशाली को चुनने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यही बात वन नीति (देखिए इकाई 27), भू-प्रबंध (देखिए इकाई 25) के संबंध में हुई और जल प्रबंध में वही साफ़-साफ़ दिखती है। उत्पादन को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाना आवश्यक था। देश के केवल 9 प्रतिशत कृष्य क्षेत्र में सिंचाई की व्यवस्था थी इसलिए सिंचाई के क्षेत्र में वृद्धि करना बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया। यह काम बहुत तेज़ी से किया जाना था और इस काम के लिए जिस पद्धति को अपनाया गया वह थी बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण। इसके अलावा विद्युत जैसे ऊर्जा के दूसरे महत्त्वपूर्ण स्रोतों की भी आवश्यकता थी। इस प्रयोजन से भी जल के दोहन और उपयोग की आवश्यकता अनुभव की गई।

तेज़ी से विकास की इस यात्रा में यह मान लिया गया कि हमारे लिए केवल पाश्चात्य मॉडल ही उपयुक्त है। इसलिए पाश्चात्य प्रौद्योगिकी का आयात किया गया और प्राकृतिक संसाधनों को यथासंभव अधिक से अधिक उत्पादक बनाने के लिए बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण किया गया। अपनी देसी व्यवस्थाओं को हटाने के बजाय उनका अध्ययन करने और उन्हें आज के लिए उपयोगी बनाने का कोई प्रयास नहीं किया गया (देखें गुप्ता 1999 : 140-145)।

धीरे-धीरे लेकिन ठोस रूप से सारा ध्यान बड़े किसानों की ओर चला गया क्योंकि विकास का मुख्य मुद्दा था – खेतों में उपज बढ़ाना। यह कार्य संकर बीजों, उर्वरकों, सिंचाई और मशीनीकरण के द्वारा किया गया। चूँकि बाँधों का पानी हर किसी को सुलभ कराना संभव नहीं था, इसलिए किसानों को आर्थिक सहायता देकर उन्हें अपनी सिंचाई-व्यवस्था विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। फलस्वरूप, सम्पन्न किसानों के लिए नलकूप (tube well) आम बात हो गई। भारत में भूजल की संभावना 4.23 करोड़ हैक्टेयर मीटर है और इसमें से केवल 23.73 प्रतिशत का ही उपयोग हो पाता है। लेकिन हाल ही के दशक में गहरे नलकूपों के द्वारा भूजल के गहरे स्रोतों का अत्यधिक दोहन किया गया जबकि उथले स्रोतों को नज़रअंदाज किया जाता रहा। 1950 के दशक में देश में 5000 नलकूपों की वार्षिक संख्या आज बढ़कर 2,00,000 प्रति वर्ष हो गई है। इस कारण भारत के बहुत से हिस्सों में भौमजल स्तर बहुत नीचा हो गया है और खुले कुएँ सूख गए हैं। केंद्रीय जल बोर्ड ने ऐसे 645 ब्लॉकों की पहचान की है जहाँ स्थिति काफी चिंताजनक हो गई है।

इसके साथ ही इकाई 27 में आपको मालूम होगा कि औद्योगिक प्रयोजनों से जंगलों को काटने से व्यापक स्तर पर वनों का विनाश हुआ है। इसके ही परिणाम हैं – मृदा अपरदन (मिट्टी का खिसकना), सूखा और बाढ़। उत्तर पश्चिमी भारत की शिवालिक शृंखलाओं से बहने वाली सदानीरा जलधाराएँ अब केवल बरसात के मौसम में पानी वाली नदियाँ बनकर रह गई हैं (सी. एस.ई. 1987)।

26.4.3 बहुसंख्यक लोगों को जल की कम सुलभता

स्पष्ट है कि पानी और वनों के अत्यधिक उपयोग के कारण ग़रीबों और स्त्रियों के लिए पानी की सुलभता में कमी हुई है। आजकल भौम जल-स्तर को ध्यान में रखते हुए जितने नलकूप खोदे जाने चाहिए उससे कहीं अधिक खोदे जा रहे हैं। इसलिए भूजल स्तर काफी गिर गया है और फलत: कुएँ और तालाब सूखते जा रहे हैं। साथ ही, पहले दिन गाँव के ताल-तलैयों की देखभाल ग्राम पंचायतों द्वारा की जाती थी, अब उनकी उपेक्षा हो रही है। ज़्यादातर पंचायत-सदस्य बड़े-बड़े किसान हैं जो अपने-अपने नलकूप लगवा सकते हैं। परिणामत: उनकी स्थानीय पेयजल व्यवस्था और सिंचाई व्यवस्था की देखभाल में दिलचस्पी नहीं रही। इस कारण में ग़रीबों को सिंचाई के लिए पानी सुलभ नहीं है। इनमें से बहुत से लोग ऐसे भी हैं जिन्हें पेयजल तक सुलभ नहीं है।

नीति बनाने वालों की यह धारणा थी कि अधिक उत्पादन और उसके न्यायसंगत वितरण को जोड़ा जा सकता है। वास्तव में, उत्पादकता को बढ़ाने के लिए बनी सरकारी नीतियाँ बड़े किसानों के पक्ष में रहीं। यद्यपि दो-तिहाई भारतीय किसान सूखी खेती कर रहे हैं, लेकिन कृषि विकास संबंधी बजट का दो-तिहाई भारतीय किसान सूखी खेती कर रहे हैं, लेकन कृषि विकास संबंधी बजट का दो-तिहाई हिस्सा सिंचाई और सिंचाई पर आधारित कृषि पर खर्च किया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि भले ही सिंचाई वाले क्षेत्र में उत्पादन बढ़ा, परंतु कुल मिलाकर कृषि उत्पादकता में कमी आई क्योंकि सूखी खेती करने वाले कृषकों की स्थिति पहले से भी अधिक खराब हुई है।

26.4.4 विस्थापन : कौन प्रभावित होता है?

बड़े किसानों और समृद्ध लोगों को पानी की सुलभता में वृद्धि हुई, इस प्रक्रिया में छोटे किसानों, निर्धन लोगों और गृहिणियों को पानी की सुलभता से वंचित होना पड़ा है। बड़े बाँधों का ग़रीब ग्रामवासियों, विशेष रूप से जनजाति के लोगों, अनुसूचित जातियों और दूसरे भूमिहीन वर्गों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इनकी कीमत उन्हें अपने मूल स्थान से द्वारा उन्हें बहुत कम मुआवज़ा दिया गया है। इन बाँधों आदि के निर्माण के कारण कितने लोगों को विस्थापित होना पड़ा, इसके

पूरे आँकड़ें हमें उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन प्रारंभिक आँकड़ों के अनुसार 1951 और 1990 के बीच बने बाँधों के कारण लगभग एक करोड़ चालीस लाख लोगों को विस्थापित होना पड़ा।

विस्थापित लोगों को इन योजनाओं का लाभ शायद ही मिला हो। इन योजनाओं से विस्थापित लोगों में से 40 प्रतिशत से अधिक जनजातीय लोग हैं। देश की जनसंख्या में इनका प्रतिशत 7.85 प्रतिशत है। इसके अलावा, अन्य 40 प्रतिशत अनुसूचित जातियों, और भूमिहीन वर्गों से हैं। जिन बाँधों और दूसरी विकास योजनाओं के कारण उन्हें विस्थापित होना पड़ा उसका लाभ उन्हें नहीं मिला (देखिए फर्नांडिस और ठुकराल 1989)।

उन्हें न केवल इन योजनाओं का कोई लाभ नहीं मिलता बल्कि इसके कारण उनकी स्थिति और भी अधिक बिगड़ जाती है। इस विषय में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि इन योजनाओं के कारण विस्थापित हुए लोगों में से 30 प्रतिशत से भी कम लोगों को 30 साल से भी अधिक अवधि में पुन: बसाया जा सका है। इनमें से कुछ लोग पर्यावरण का विनाश करने वाले कार्यों में लग गए। ये लोग जंगल में लकड़ी काट कर जलाने और बेचने का काम करने लगे। बहुत से दूसरे लोग शहरों में जाकर झुग्गी-झोंपड़ियाँ बनाकर रहने लगे, जहाँ उनका और भी शोषण होता है। इनमें से बहुत बड़ी संख्या में लोग मज़बूर होकर बंधुआ मज़दूर में से एक-चौथाई संख्या इन बंधुआ मज़दूरों की है (फर्नांडिस 1986 : 269)। इस प्रकार, विकास से प्रभावित होने वाले लोगों को न केवल पानी की सुलभता से वंचित होना पड़ता है बल्कि उन्हें अपनी स्वतंत्रता और मनुष्य के रूप में जीने के अधिकार को भी खोना पड़ता है।

बोध प्रश्न 3

1) ''बहुसंख्यक लोगों को जल संसाधन की कम सुलभता के लिए केवल ब्रिटिश जल नीति ही ज़िम्मेदार है''। क्या यह कथन सही है? अपना उत्तर छह पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कारण को प्रभाव के साथ जोड़िए :

कारण	**प्रभाव**
क) बटाईदारी	1) प्रबंध में लोगों की भागीदारी को निरुत्साहित किया गया।
ख) अधिक संख्या में नलकूप होना	2) भू-जल स्तर कम हो जाता है।
ग) ग्रैंड एनिकट की देखभाल	3) मुख्य रूप से भूमिहीन लोगों का विस्थापन।
घ) अधिक उत्पादन और न्यायसंगत वितरण में प्रतिस्पर्धा	4) देसी प्रौद्योगिकी को सीखने की आवश्यकता।
ङ) प्रमुख बाँध	5) सिंचाई विभाग को संगठित किया गया।

च) सब पर वैज्ञानिक प्रबंध लागू किया गया

छ) टैंकों और नहरों की देखभाल होनी है

6) नीति बड़े किसानों के पक्ष में है ज़्यादा पैदावार दे सकते हैं।

7) सिंचाई पर निवेश (पैसा लगाने) के लिए प्रोत्साहन का अभाव।

26.5 राष्ट्रीय जल नीति, 1987 : क्या इससे जल सुलभता बढ़ी है?

आशा है आपको याद होगा कि हमने राष्ट्रीय जल नीति, 1987, के बारे में विचार करने की बात की थी। इस विषय में विचार करने का कारण संसाधनों पर एकाधिकार करने की प्रवृत्ति है। यहाँ हमने पहले यह देखा है कि राष्ट्रीय नीति का क्या लक्ष्य है और फिर देखा है कि वास्तव में उसे कार्यान्वित करते समय क्या होता है। अंत में, हमने कुछ संभावित विकल्प प्रस्तुत किए हैं। हमें आशा है कि इससे बहुसंख्यक जनसंख्या को जल की अपेक्षाकृत कम सुलभता की समस्या का यथासंभव उचित समाधान मिल सकेगा।

26.5.1 प्राथमिकताओं का निर्धारण

जो लोग पहले ही साधनसम्पन्न हैं और उन्हें अधिक जल प्राप्त है, उनकी स्थिति और कमज़ोर हो गई है – इस संदर्भ में हमने राष्ट्रीय जल नीति, 1987 पर विचार किया है। इस नीति में निर्धारित प्राथमिकताएँ निम्नलिखित क्रम में दी गई हैं :

- पेयजल
- सिंचाई जल
- जल विद्युत
- जल का औद्योगिक उपयोग

परंतु आगे चलकर जल नीति के प्रलेख में इस बात का उल्लेख है कि किसी विशिष्ट क्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इन प्राथमिकताओं के क्रम में परिवर्तन भी किया जा सकता है। नीति के लक्ष्य हैं :

- देश की पूरी आबादी को 1991 तक पर्याप्त पेयजल उपलब्ध कराया जाए।
- सिंचाई परियोजनाओं को कार्यान्वित करने के कारण विस्थापित होने वाले लोगों का पुनर्वास किया जाएगा।
- जल प्रबंध करते समय अनुसूचित जातियों और जनजातियों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। (देखिए फर्नांडिस 1988 : 92-93)।

26.5.2 समर्थ वर्गों के लिए कार्यनीति

कार्यनीति के आयोजन के बारे में सोचते ही हमारा ध्यान मुख्य रूप से सिंचाई और जल विद्युत योजना पर जाता है। इसे ब्रिटिश शासक जल का "वैज्ञानिक प्रबंध" कहते थे और इसके लाभ केवल समर्थ और साधन सम्पन्न वर्गों को मिलते थे। नीति प्रलेख में नदियों के जल के पारस्परिक विनिमय का उल्लेख किया गया है ताकि हम वर्तमान उपलब्ध संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग कर सकें। इस दस्तावेज़ में महिलाओं का कहीं उल्लेख नहीं है, हालाँकि देश के वर्तमान श्रम विभाजन में परिवार को जल की नियमित आपूर्ति कराने में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

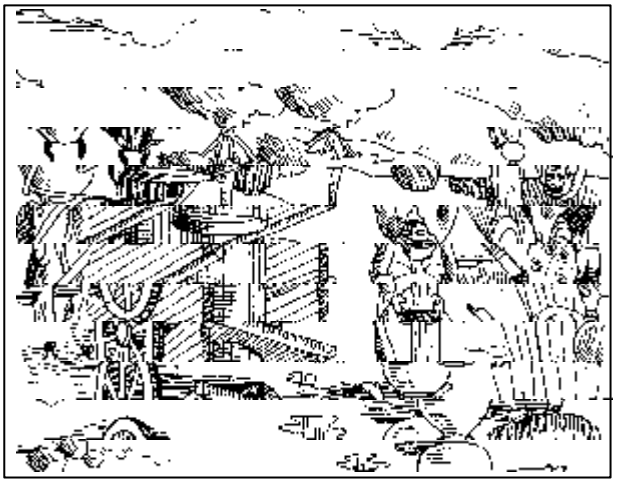

पानी मिलना आज दूभर हो गया है

इसी तरह, योजना बनाने वालों का ध्यान मुख्य रूप से सिंचाई बाँधों पर है। इनमें से ज़्यादातर बाँध वन क्षेत्रों में होते हैं, जहाँ जनजातियों के लोग रहते हैं। इस प्रलेख में जनजातियों के विकास को प्राथमिकता देने की आवश्यकता का सरसरी तौर पर उल्लेख हुआ है लेकिन इस प्रलेख में या अन्यत्र कहीं भी विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए कोई स्पष्ट नीति निर्धारित नहीं की गई है। अंतत: नीति संबंधी विवरण/प्रलेख में सूखे और जल-विहीन क्षेत्रों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। इस प्रकार पानी के उपयोग की सुविधा केवल उन वर्गों के लिए है जिनके पास सिंचाई-योग्य भूमि हो।

26.5.3 संभावित विकल्प

सीमांतीकरण (marginalisation) की इस स्थिति के विकल्प संभव हैं। भारत में विकास की कार्यनीतियों की योजना बनाने में परिष्कृत प्रौद्योगिकी और इंजीनियरी के चमत्कारपूर्ण प्राश्चात्य मॉडल को ही अब तक आधार माना जाता रहा है। इस दृष्टि से योजनाकारों की जल प्राप्ति के लिए बाँध ही एकमात्र संभावित स्रोत दिखाई दिए। फलस्वरूप, किसानों को, विशेष रूप से तटवर्ती क्षेत्रों के किसानों को, खेतों की सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध कराने के लिए और शहरों में उद्योगों तथा घरेलू उपयोग के लिए पानी मुहैया कराने के लिए, जनजातीय और अन्य निर्धन लोगों को विस्थापित होना पड़ता है।

i) खारे पानी को मीठा पानी बनाना

इस संबंध में एक सुझाव है कि भारत का तटवर्ती क्षेत्र 6000 कि.मी. लंबा है, इसलिए यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि तटवर्ती क्षेत्रों और यहाँ तक कि उनके निकटवर्ती भीतरी क्षेत्रों के उपयोग के लिए खारे पानी को मीठा बनाने की संभावना पर विचार किया जाना चाहिए। वर्तमान विलवणीकरण (खारे पानी को मीठा बनाना) प्रौद्योगिकी बहुत अधिक महँगी है क्योंकि यह 1950 के दशक की है। हमें विलवणीकरण की नई और सस्ती प्रौद्योगिकी के विकास के लिए अनुसंधान करना चाहिए। इसके द्वारा हमें अधिकांश तटवर्ती क्षेत्र तथा भीतरी क्षेत्र के कई भागों की जल संबंधी समस्या का हल मिल सकता है।

ii) सौर ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग

एक और सुझाव भी विचारणीय है कि भारत के अधिकांश क्षेत्रों में साल में 308 दिन सूर्य निकलता है और धूप रहती है। आज भारत की ऊर्जा नीति में सौर ऊर्जा को बहुत कम महत्त्व दिया गया है। बाँधों और तापीय संयंत्रों (thermal plant) से प्राप्त होने वाली बिजली के कारण लोगों को विस्थापित होना पड़ता है। दूसरी ओर, अभी तक विकसित सौर प्रौद्योगिकी बहुत महँगी है। वास्तव में, एक मेगावाट सौर ऊर्जा पैदा करने के लिए 4 करोड़ रुपये खर्च करने पड़ते हैं, जबकि तापीय (थर्मल) संयंत्र से प्राप्त इतनी ही ऊर्जा पर 3 करोड़ और जल विद्युत से प्राप्त

ऊर्जा पर 2 करोड़ रुपये खर्च होते हैं। लेकिन नई सदी के लिए और प्रौद्योगिकी के लिए बहुत कम अनुसंधान कार्य हो रहा है। आज हमारे पास जो कुछ है, वह 1970 और 1980 के दशकों का है। आज श्रेयस्कर होगा कि हम और अधिक लोगों को विस्थापित करने और निर्धन वर्ग को पानी की या उनके रोज़गार से वंचित करने के बजाय और शक्ति के द्वारा ऊर्जा के बचाव के उपायों पर पैसा खर्च करें।

iii) प्रदूषित जल का खाद के रूप में प्रयोग

पानी को प्रदूषण से बचाने के भी उपाय किए जा सकते हैं। आज औद्योगिक अपशेष और मानव मलमूत्र एवं कूड़े-कचरे आदि को नदियों और समुद्र में प्रवाहित कर दिया जाता है, इससे वह पूरा जल प्रदूषित हो जाता है जिसकी मनुष्य मात्र को अपने अस्तित्व के लिए आवश्यकता है। इस कूड़े-कचरे का उपयोग खाद के रूप में करके एक ओर विदेशी मुद्रा की बचत हो सकती है और दूसरी ओर पानी को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। आज हमारे देश में खाद या उसके लिए कच्चे माल आयात पर काफी विदेशी मुद्रा बरबाद हो रही है।

iv) पानी के दुरुपयोग पर निषेध

जिस पानी को निर्धन लोगों को आसानी से सुलभ कराया जा सकता है, उसको शहरी क्षेत्र के बाग-बगीचों को सींचकर और मध्य वर्ग के घरों की सफाई करके बरबाद किया जाता है विद्युत शक्ति को सड़कों और गली-कूचों में रोशनी करके बरबाद किया जाता है। इसका मतलब यह नहीं है कि हम बाग-बगीचों को पानी से सींचने, घरों की सफ़ाई करने या गलियों में रोशनी करने के खिलाफ हैं। ये सभी काम भी ज़रूरी हैं और इनको करना भी आवश्यक है। हमें इस बात का कोई कारण नहीं नज़र आता कि क्यों जलमल-उपचार संयंत्रों को लगाने की व्यवस्था न की जाए और इन संयंत्रों से उपलब्ध होने वाली बायो गैस का उपयोग सड़कों पर रोशनी करने के लिए किया जाए तथा इससे मिलने वाली बायो गैस का उपयोग सड़कों पर रोशनी करने के लिए किया जाए तथा इससे मिलने साफ़ पानी का उपयोग घरों की सफ़ाई के लिए किया जाए। इस प्रक्रिया में जो कूड़ा-कचरा बचे, उसे बाग़-बग़ीचों और खेतों में उपयोग के लिए खाद में परिवर्तित किया जाए। प्रदूषण-विरोधी कानूनों को कड़ाई से लागू करके औद्योगिक प्रदूषण को रोका जा सकता है।

आपके लिए यह जानकारी रोचक होगी कि 'इग्नू' के आवासीय परिसर में 'मलजल उपचार संयंत्र' लगा है। यहाँ सारा प्रयुक्त जल उपचारित किया जाता है और इसके बाद उसे एक व्यापक स्तर पर बाग़वानी और उद्यान कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है।

v) जल संग्रहण का प्रबंध

जल की उपलब्धता को बढ़ाने के लिए जल संग्रहण क्षेत्र के विकास और प्रबंध के रूप में वनरोपण योजना का विशेष महत्त्व है। जहाँ वनरोपण किया गया है, वहाँ भौम जल के स्तर में वृद्धि हुई है। इसका उदाहरण कर्नाटक का जी.आर. हल्ली क्षेत्र है जहाँ 314 हैक्टेयर जल संग्रहण क्षेत्र के 199 हैक्टेयर में वनरोपण किया गया। यहाँ भू-जल के स्तर में पर्याप्त वृद्धि हुई और सिंचाई क्षेत्र में भी 50 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई। एक अनुमान के अनुसार मृदा के संरक्षण से और उस क्षेत्र में बने तालाबों में प्रति वर्ष 500 मि.मी. से अधिक वर्षा से मिले पानी को जमा करे 900 लाख है.मी. पानी जमा हो सकता है। चंडीगढ़ के निकट सुखोमजरी के अनुभव और हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में किए गए परीक्षणों से यह परिणाम निकला कि इन तालाबों या टैंकों का निर्माण प्रति हैक्टेयर सिंचाई क्षेत्र के लिए 5000 रुपये की लागत से किया जा सकता है, जबकि बड़े-बड़े बाँधों में प्रति हैक्टेयर सिंचाई क्षेत्र का लागत मूल्य 15,000/- रुपये से 25,000/- रुपये तक आता है (अग्रवाल, डी. मोण्टे तथा समर्थ 1987)।

vi) छोटे-छोटे बाँधों का निर्माण

यह भी पाया गया है कि ज़्यादातर बड़े बाँधों की क्षमता के केवल 30 प्रतिशत का ही उपयोग हो जाता है। इसके अलावा बाँधों का जीवनकाल, उसके जलाशयों में गाद भर जाने के कारण,

आधा रह जाता है। अच्छा होगा कि लोगों को विस्थापित करने वाले और पर्यावरण का विनाश करने वाले और अधिक बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण करने के बजाय वर्तमान बाँधों से जमा गाद को हटाकर और जल-ग्रहण क्षेत्रों में वनरोपण करके हम इनकी उपयोग-क्षमता को दुगुना करें। इसका एक और विकल्प कम विनाशकारी छोटे बाँधों का निर्माण हो सकता है। इन बाँधों के निर्माण में देशी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल हो सकता है क्योंकि हमारे स्थानीय कारीगर काफ़ी समय से ऐसे बाँधों का निर्माण करते रहे हैं। इन उपायों से उस क्षेत्र में नए रोज़गार के अवसर पैदा होंगे तथा लाखों लोगों को विस्थापित भी नहीं होना पड़ेगा और पुनर्वास की समस्या भी नहीं पैदा होगी।

सोचिए और करिए 3

यदि हमारी जल नीति से बहसंख्यक जनता को जल प्राप्ति नहीं होती, तो आप प्राथमिकता के आधार पर जल सुलभ कराने के दूसरे विकल्पों के दूसरे विकल्पों की सूची बनाइए। आप एक ऐसे विकल्प को चुनिए जो आपके क्षेत्र के लिए उपयुक्त हो। आप कल्पना कीजिए, कि आप उस समिति के सदस्य हैं जिसका दायित्व भारत में जल नीति को क्रियान्वित करना है। आप 300 शब्दों की एक टिप्पणी लिखिए जिसमें बताया गया हो कि आपने जिस विकल्प को चुना है उसके द्वारा कैसे आपके क्षेत्र में जल संसाधन को अधिकाधिक लोगों को सुलभ कराया जा सकेगा।

vii) पानी एक सामुदायिक संसाधन के रूप में

अन्य अनेक विकल्पों पर भी विचार किया जा सकता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम पहले अपनी प्राथमिकताएँ निर्धारित करे और पहले से ही जो साधनसम्पन्न वर्ग है उन्हें और अधिक सशक्त न बनाएँ। हम पानी को व्यक्तिगत सम्पत्ति के बजाय समुदाय के संसाधन के रूप में देखना होगा। हमें कुछ साधन सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा बहुसंख्यक समाज को हानि पहुँचाकर इस संसाधन के अत्यधिक दोहन पर प्रतिबंध लगाना होगा। बड़े किसानों और भवन-निर्माण से संबंधित ठेकेदारों के निहित स्वार्थ इन विकल्पों के मार्ग में बड़ी रुकावट हैं। कुछ गिने-चुने लोगों द्वारा पानी के अति दोहन को नियंत्रित करने के प्रयास आम तौर पर विफल हुए हैं। उदाहरणार्थ, 1975 में गुजरात विधानसभा में एक बिल पेश किया गया था जिसमें पानी को सर्वसामान्य के लिए प्राप्य संसाधन की तरह स्वीकार किया गया था और कहा गया था कि व्यक्तियों के लिए इसके उपयोग को सर्वसामान्य हित को ध्यान में रखकर ही नियमित किया जाना चाहिए। इस बिल को पारित होकर कानून नहीं बनने दिया गया। इसके बाद इस बिल को दुबारा पेश करने का न तो गुजरात विधानसभा में और न ही किसी अन्य राज्य की विधानसभा में प्रयास किया गया (भाटिया 1988 : 156)। सर्वसामान्य के लिए संसाधनों को प्राप्त कराने के संबंध में इस निर्णय का विशेष महत्त्व हैं महात्मा गाँधी के मानदंड के अनुसार कोई भी निर्णय करते समय ''ऐसे ग़रीब से ग़रीब और सबसे असहाय, दीन-हीनव्यक्ति के चेहरे को ध्यान में लाइए जिसे कभी आपने देखा हो और अपने आप से पूछिए कि आप जो कदम उठाने जा रहे हैं उसका उस व्यक्ति को भी कोई लाभ होगा?''

बोध प्रश्न 4

1) राष्ट्रीय जल नीति, 1987 के कारण बहुसंख्यक जनता के लिए जल की सुलभता में वृद्धि क्यों नहीं हुई? अपना उत्तर दो पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

2) क्या राष्ट्रीय जल नीति के प्रलेख में पेयजल की आपूर्ति के संदर्भ में श्रम-विभाजन में महिलाओं की भूमिका का उल्लेख किया गया है? अपना उत्तर तीन पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

26.6 सारांश

इस इकाई में पहले हमने भारत में पानी के प्रबंध के बारे में वर्तमान स्थिति की चर्चा की और देखा कि जल संसाधन की सुलभता साधनसम्पन्न और शक्तिशाली वर्गों की अपेक्षा निर्धन और कमज़ोर वर्गों के लिए बहुत कम है। ऐसी स्थिति क्यों है, इसे समझने के लिए हमने ब्रिटिश शासनकाल में जल प्रबंध प्रणालियों के बारे में विचार किया और ब्रिटिश काल की और आज़ादी के बाद की जल नीतियों का अध्ययन किया। हमने देखा कि ब्रिटिश शासकों द्वारा पानी के संबंध में राजस्व पर आधारित नीति का विकास करने से पहले जल को किसी सीमा तक सामान्य सम्पत्ति के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन अंग्रेज़ों के शासन के पूर्व भी वन जैसे अन्य संसाधनों के विपरीत सिंचाई के स्रोत के रूप में पानी की सुलभता केवल शक्तिशाली ज़मींदारों तक ही सीमित थी। जल-वितरण प्रणाली और उसका अनुरक्षण सामूहिक भागीदारी पर आधारित था। लेकिन यह बात केवल सम्पत्तिधारी वर्ग तक ही सीमित थी। सम्पत्तिहीन और कमज़ोर वर्गों को इसका लाभ नहीं मिलता था। बाद में अंग्रेज़ों की राजस्व पर आधारित सिंचाई नीति के लागू होने के बाद इस भागीदारी में कमी आ गई।

आज़ादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं पर आधारित विकास के युग में इस प्रवृत्ति में और अधिक वृद्धि हुई। इसमें ध्यान इस बात पर रहा कि किस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों से उत्पादकता को अधिक से अधिक बढ़ाया जाए। बिजली के उत्पादन और सिंचाई की ज़मीन को बढ़ाने के लिए मुख्य रूप से बड़े बाँधों के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया गया। इसके कारण लोगों को, विशेषत: कमज़ोर वर्ग के लोगों को, विस्थापित होना पड़ा। नीति का लाभ हमेशा पहले से ही शक्तिशाली एवं साधनसम्पन्न लोगों को मिला।

26.7 शब्दावली

अवक्षेपण (Precipitation) : जलवृष्टि, ओलावृष्टि हिमपात अथवा पानी के अन्य रूप।

जल संग्रहशाला (Watershed) : यह एक प्राकृतिक भौगोलिक इकाई है। इसके जलग्रहण क्षेत्र में पानी की धारा बहती है। छोटे आकार वाली किसी छोटी जलसंग्रहशाला का माप 100 हैक्टेयर से 500 हैक्टेयर तक होता है। इस क्षेत्र में 100 से 300 तक परिवार बसे होते हैं।

ज़मींदार (Zamindar) : ज़मीन की सबसे ऊँची बोली लगाने वाली भूस्वामी जिसे पूरा क्षेत्र स्थायी भूस्वामित्व के अंतर्गत दे दिया जाता था। वह काश्तकारों और बटाईदारों का पट्टे पर ज़मीन दे देता था।

प्रस्वेदन (Transpiration) : पौधों जैसे जीवधारियों से भाप के रूप में जल-उत्सर्जन की प्रक्रिया।

बटाईदार (Share Cropper) : काश्तकार जिन्हें स्थायी बंदोबस्त क्षेत्र में ज़मीदार लोग किसी निर्धारित लगान पर नहीं बल्कि उपज के हिस्से के रूप में अपनी ज़मीन देते हैं। यह भाग फसल के 50 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक होता है।

बंधिका (Weir) : नदी के बहाव को रोकने के लिए नदी के आर-पार बनी हुई दीवार या अवरोध। बहते पानी को रोकने के लिए टूटी हुई शाखाओं से

बनी हुई बाड़ बना दी जाती है जो मछलियों को पकड़ने के लिए जाल का काम करती है। इस पानी से सिंचाई भी होती है।

रैयत (Ryot) : वह कृषक (रैयत) जिसका सरकार के साथ सीधा करार होता था। वह ज़मींदार के अधीन काश्तकार न होकर स्वयं राज्य को सीधे कर देता था। यह प्रणाली मुख्य रूप से भारत के दक्षिणी क्षेत्र में प्रचलित थी।

रैयतवाड़ी (Ryotwari) : रैयतवाड़ी ऐसी प्रथा या क्षेत्र को कहते हैं जिसमें रैयत सरकार के साथ सीधे करार करते हैं।

वाष्पोत्सर्जन (Evapotranspiration) : पौधों द्वारा प्रस्वेदन के माध्यम से जल का वाष्पीकरण।

स्थायी भूमि व्यवस्था या इस्तमरारी बंदोबस्त (Permanet Settlement) : 1793 में बंगाल प्रेसिडेंसी में ब्रिटिश शासकों द्वारा लागू की गई भूस्वामित्व व्यवस्था। इस प्रणाली में कई गाँव या काफी बड़ा क्षेत्र नीलाम कर दिया जाता था और सबसे ऊँची बोली लगाने वाले (ज़मींदार) को वह क्षेत्र दे दिया जाता था। ज़मींदार सरकार को प्रति वर्ष राजस्व की एक नियत राशि देता था। इस राजस्व की या कर की वसूली वह काश्तकारों को अपनी ज़मीन पट्टे पर देकर करता था।

सार्वजनिक सम्पत्ति संसाधन (Common Property Resources) : कोई ऐसी सम्पत्ति जिस पर सारे समुदाय का अधिकार हो। पूरा समुदाय जिसका उपभोग, वितरण के कुछ ऐसे निश्चित नियमों के अनुसार करे जिससे प्रत्येक उपभोक्ता को अपना उचित हिस्सा मिले।

हैक्टेयर मीटर (Hectare Metre) : 10,000 घन मीटर।

26.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) सही या ग़लत पर निशान :
   - क) गलत
   - ख) सही
   - ग) गलत
   - घ) सही

बोध प्रश्न 2

1) क – गलत
   ख – सही
2) क – 2
   ख – 1
3) पुराने ज़माने में सिंचाई के लिए तथा घरों में काम में लाने के लिए पानी का एक ही स्रोत होता था। पानी के न्यायसंगत वितरण के लिए ज़रूरी था कि कुछ सामाजिक तरीके हों

जिससे सभी को जरूरत भर पानी अवश्य मिले। पेयजल की प्राप्यता की व्यवस्था के बारे में कुछ विशेष जानकारी नहीं है। परंतु कुछ ऐतिहासिक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि मुग़लकाल में सिंचाई के लिए बड़े-बड़े बाँध बनाए गए थे। हमें पुराने तालाब, बाँध, टैंक तथा कुएँ मिलते हैं जिसमें से कुछ आज भी काम में आ रहे हैं। प्राय: ग्राम-पंचायतें तय करती थीं कि पानी के न्यायसंगत वितरण के लिए क्या नियम बनाए जाएँ तथा सिंचाई से जुड़ी व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिए नाना प्रकार के कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी।

बोध प्रश्न 3

1) ब्रिटिश सरकार की जल नीति बहुसंख्यक लोगों को जल सुलभ न कराने के लिए अंशत: ही जिम्मेदार है। यह बात स्पष्ट है कि भारत में आज़ादी के बाद ही जल नीति से भी बहुसंख्यक लोगों की जल की प्राप्यता में कमी ही आयी है। आज भी, साधनसम्पन्न और शक्तिसम्पन्न वर्ग के लोगों की लगभग सभी संसाधनों पर, जिनमें जल संसाधन भी शामिल है, पहुँच अपेक्षाकृत अधिक है जबकि समाज के निर्धन और कमज़ोर वर्ग के लोगों को अत्यावश्यक संसाधन पानी की न्यूनतम सुलभता से भी वंचित रहना पड़ रहा है।

2) क – 7; ख – 2; ग – 4; घ – 6; ङ – 3; च – 1; छ – 5;

क) बटाईदारी	सिंचाई पर निवेश के लिए प्रोत्साहन का अभाव।
ख) बहुत अधिक नलकूपों का होना	भू-जल स्तर कम हो जाता है।
ग) उच्च उत्पादकता और वितरण न्याय में प्रतियोगिता	नीति बड़े किसानों के पक्ष में है जो ज़्यादा पैदावार दे सकते हैं।
घ) ग्रैंड एनिकट की देखभाल	देसी प्रौद्योगिकी को सीखने की आवश्यकता।
ङ) प्रमुख बाँध	मुख्य रूप से भूमिहीन लोगों का विस्थापन।
च) सब पर वैज्ञानिक प्रबंध लागू किया गया	जल प्रबंधन में लोगों का भागीदारी को निरुत्साहित किया गया।
छ) टैंकों और नहरों की देखभाल की जाती है	सिंचाई विभाग को संगठित किया गया।

बोध प्रश्न 4

1) राष्ट्रीय जल नीति, 1987 में सिद्धांतत: बहुसंख्यक लोगों को पानी प्राप्त कराने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है। इस नीति के कार्यान्वयन के स्तर पर आज भी अधिकांश जल प्रबंध सिंचाई और जल विद्युत की व्यवस्था के क्षेत्रों में हुआ है। इन दोनों का लाभ उन लोगों को मिल रहा है जो पहले से शक्तिसम्पन्न और धनी हैं।

2) ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में, आम तौर पर, घरेलू कामकाज की ज़िम्मेदारी महिलाओं पर होती है। घरेलू उपयोग के लिए पानी की बहुत आवश्यकता होती है। इसलिए, महिलाओं का सीधा संबंध पानी उपलब्ध कराने वाले साधनों और उपायों से होता है। इसलिए यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि राष्ट्रीय जल नीति में जल के उपयोग के क्षेत्र में महिलाओं की विशिष्ट भूमिका को स्वीकार किया जाए और उसका उल्लेख किया जाए। इसके अलावा, इस नीति में इस बात का स्पष्ट सुझाव दिया जाए कि किस प्रकार महिलाओं को आसानी से पानी प्राप्त हो सकेगा और उन्हें अपने आवास से दूर स्थित जल स्रोतों से पानी सिर पर उठाकर लाने के लिए विवश नहीं होना पड़ेगा।